विकास योजनाओं में इंसान का पता नहीं

महबूब उल हक

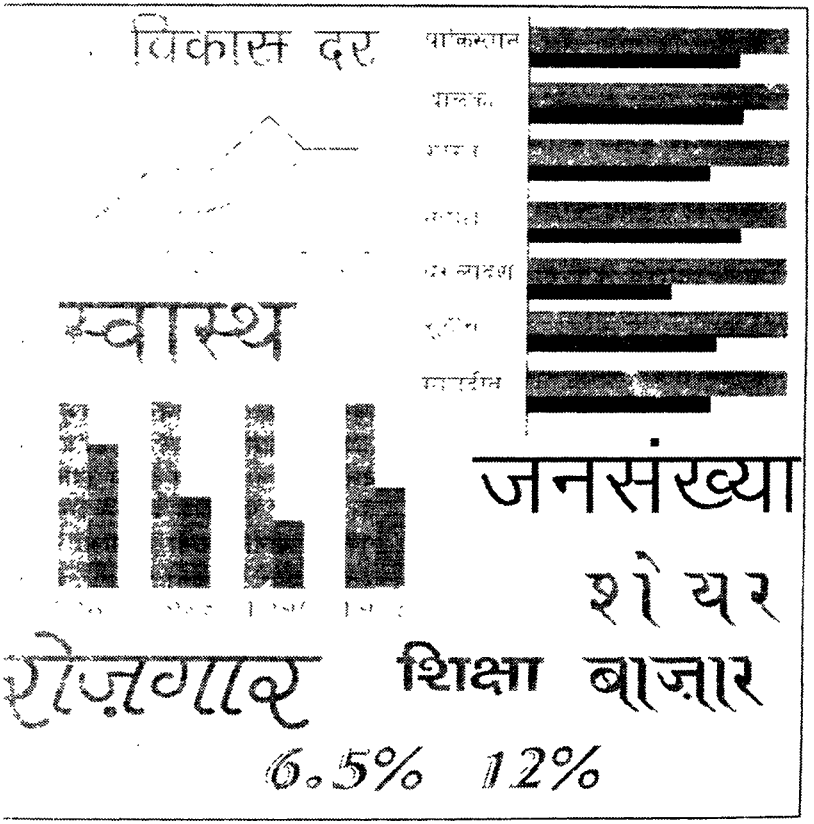

आम ज़िन्दगी में सबसे कठिन काम है उस चीज़ को खोजना जो एकदम सामने है। यह सवाल उठाने के लिए कि सेव ऊपर न जाकर नीचे क्यों गिरता है, न्यूटन की ज़रूरत पड़ी और उसने आगे जाकर गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत का अविष्कार किया। आइन्स्टीन की ज़रूरत पड़ी यह बताने के लिए कि समय और दूरी सापेक्ष हैं, निरपेक्ष नहीं। और फिर उसने सापेक्षता का सिद्धांत प्रतिपादित किया। यह बताने के लिए कीन्स की जरूरत पड़ी कि अगर हर व्यक्ति निवेश किए बगैर बचत करता है, तो पूरा देश बचत नहीं कर सकेगा क्योंकि कुल उत्पादन कम होता जाएगा। इसलिए जो बात एक व्यक्ति को लेकर आर्थिक रूप से विवेकपूर्ण मानी जाती है वह शायद समग्र स्तर पर उतनी विवेकपूर्ण न हो। इसी बात ने 'जनरल थ्योरी' को जन्म दिया। और दूसरे महायुद्ध के समय यह गर्जना करने के लिए चर्चिल की ज़रूरत पड़ी कि, "बच्चों को दूध पिलाने से बेहतर कोई निवेश नहीं है।"

इसी भावना के अनुरूप, विकास के कई दशकों के बाद हम एक ज़ाहिर-सी बात की पुनः खोज कर रहे हैं कि जनता के ज़रिए ही आर्थिक विकास होता है और जनता ही विकास का मकसद भी है। अक्सर यह सीधा-सादा सत्य धुंधला हो जाता है क्योंकि हम अमूर्त रूप में कुल योग के रूप में और समग्रता और संख्या के रूप में बातें करने के आदी हैं। सौभाग्य से इंसान इतने ढीठ हैं कि वे अपने को महज एक अमूर्तिकरण बन जाने नहीं देते तिस पर भी उन्हें बड़ी आसानी से भुला दिया जाता है।

विकास किन चीज़ों के ज़रिए होता है इसकी चर्चा करते समय अर्थशास्त्री अक्सर निवेश की पूंजी की चर्चा करते हैं। इस भौतिक पूंजी को ही सबसे ज़्यादा महत्व दिया जा रहा है और उत्पादन में सहायक कई अन्य तत्वों को छोड़ दिया गया है। मानवीय पूंजी की माप न तो तादाद के रूप में की जाती है और न उसकी गुणवत्ता के रूप में। उसकी तरफ जितना ध्यान दिया जाना चाहिए उतना नहीं दिया जा रहा है। कई समुदायों के पास वित्तीय पूंजी खूब होने के बावजूद वे अपना विकास नहीं कर पाए हैं। ओपेक देशों का ताज़ा अनुभव इसका उदाहरण है। इनमें से अधिकांश देशों में इन्सानी पूंजी - यानी इंसानी संस्थाओं और इंसानी हुनर की कमी थी और इसके बिना उन्हें संयोग से जो धन लाभ हुआ उसे वे वास्तविक विकास में नहीं बदल पाए। इनमें से कुवैत जैसे कुछ देश अपनी अस्थाई उपलब्धियों को स्थाई आय में बदल कर विकसित होने में कामयाब हुए हैं। लेकिन इस बदलाव के लिए बचत के अलावा, बल्कि उससे

भी बढ़कर इंसानी पहल और इंसानी पूंजी की ज़रूरत पड़ी।

एक जैसे प्राकृतिक संसाधन वाले समाज भी काफी अलग तरह से विकसित हुए हैं क्योंकि उनमें अलग-अलग किस्म की इंसानी काबिलियत थी। ज़रा आज आप अफ्रीकी, एशियाई और लेटिन अमरीकी देशों की विभिन्न समस्याओं और विकास के रास्तों को देखें। हमने देखा है कि पड़ोसी देशों ने एक जैसा ही निवेश किया है पर उन्होंने एकदम अलग परिणाम प्राप्त किए हैं। एक देश की वृद्धि दर 3 प्रतिशत है तो दूसरे की 7 प्रतिशत। असल में महत्वपूर्ण फर्क है: इंसानी कौशल और उद्यमिता और इन्हें पैदा करने वाली संस्थाएं। लेकिन हम अर्थशास्त्री बनकर बचत और निवेश, आयात और निर्यात के बारे में ही सोचते रहते हैं; और सोचते रहते हैं सकल राष्ट्रीय उत्पाद के बारे में। जो एक सबसे ज़्यादा सुविधापूर्ण अमूर्तिकरण ठहरा। जब हम यह विचार करते हैं कि विकास के माध्यम के रूप में इंसानों की क्या भूमिका है तो हमारी नज़र में वे बहुत पीछे रहते हैं।

ज़्यादा हैरानी की बात यह है कि इस बात को लोग नहीं मान रहे हैं कि लोग ही विकास का लक्ष्य हैं। सिर्फ पिछले दो दशकों से ही हमने सकल राष्ट्रीय उत्पाद से परे इस बात पर ध्यान देना शुरू किया है कि विकास किसके लिए है। पहली बार हम बेमन से यह मानने लगे हैं कि कई समुदायों में सकल राष्ट्रीय उत्पाद तो बढ़ सकता है पर वहां के निवासियों का जीवन मुरझा सकता है। हमने लोगों की ज़रूरतों पर ध्यान देना और गरीबी के आंकड़े जमा करना शुरू किया है और समाज के धरातल के उन 40 प्रतिशत लोगों की स्थिति पर ध्यान देना शुरू किया है जिनकी, विकास के दौरान अकसर उपेक्षा कर दी जाती है। हमने लागत एडजस्टमेंट* के लिए चुकाए गए मूल्य का हिसाब लगाते समय उत्पादन में हुए नुकसान को ही नहीं बल्कि जनहानि और जनक्षमता की हानि को भी मापना शुरू किया है। हम अन्ततः इस सिद्धांत को स्वीकार करने लगे हैं कि विकास का सच्चा

* *स्ट्रक्चरल एडजस्टमेंट प्रोग्राम का तात्पर्य तीन बातों से है: पहला स्थिरीकरण, दूसरा विश्व बाज़ार व्यवस्था के लिए खुलना, तीसरा घरेलू बाज़ार व्यवस्था को नियंत्रण मुक्त करना। इन आखरी दो पहलुओं को आमतौर पर ढांचागत सुधार या स्ट्रक्चरल रिफॉर्म कहा जाता है। ऐसा इसलिए क्योंकि ये उस ढांचे में या रूपरेखा में बदलाव करते हैं जिसमें कि अर्थव्यवस्था संचालित होती है। उदाहरण के लिए उद्योगों को लाइसेंस देने की प्रणाली को खत्म किया गया और आयात-निर्यात पर लगे प्रतिबंधों को हटाया गया। रही बात पहले बिन्दु की यानी स्थिरीकरण की, तो इसका तात्पर्य ऐसा वित्तीय प्रबंध करने से है ताकि देश को ऋण-संकट का सामना न करना पड़े या दूसरे देशों से लिए गए ऋणों को लौटाने में असमर्थ न होना पड़े।*

लक्ष्य मानव कल्याण है – सकल उत्पाद की वृद्धि नहीं।

लेकिन इस बात पर कम ही विचार किया गया है कि लोगों को एक साध्य मानकर और एक लक्ष्य मानकर विकास से कैसे जोड़ें। यदि लोगों को विकास के केन्द्र में रखा जाए तो आर्थिक योजना के लिए इसके क्या ठोस निहितार्थ होंगे। विकास योजना में, (एडजस्टमेंट) ताल-मेल की प्रक्रिया में और अंतर्राष्ट्रीय फैसलों में मानवीय आयाम को केन्द्र में रखने के निहितार्थों की खासतौर से जांच-पड़ताल करने की ज़रूरत है।

विकास योजना में मानवीय आयाम

यदि योजनाओं का लक्ष्य उत्पादन न होकर इंसान होते तो शायद ज़्यादातर विकास योजनाओं का चेहरा ही बदल जाता। उनमें कम-से-कम वे पांच खास तत्व होते जो आज की ज़्यादातर योजनाओं में नहीं हैं:

1. इन योजनाओं की शुरुआत इस बात से की जाती कि देश में कितना मानव संसाधन है, लोग कितने शिक्षित हैं, और उनमें कौशल कितना है। आय के बंटवारे की और गरीबी की क्या स्थिति है? कितनी बेरोज़गारी है और कितनों के पास ज़रूरत से कम आय वाले रोज़गार हैं? अलग-अलग इलाकों में शहरों की और गांवों की जनता का अनुपात क्या है और मानव विकास का स्तर क्या है? क्या देश में जनसंख्या की स्थिति में तेज़ी से बदलाव हुआ है, और उनकी आकांक्षाएं क्या हैं? दूसरे शब्दों में, समाज रहता कैसे है और सांस कैसे लेता है? अक्सर विकास योजना के पहले अध्याय में सकल राष्ट्रीय उत्पाद, बचत, निवेश का योग रहता है और राष्ट्रीय आय के लेखे की दूसरी बातें रहती हैं। पर होना यह चाहिए कि पहले अध्याय में जनता की समग्र हालात का ब्यौरा हो। यदि हमें लोगों की पर्याप्त जानकारी नहीं है, तो हम लोगों के लिए योजना नहीं बना सकते। आंकड़े न मिलने का बहाना नहीं चलेगा। मानवीय तत्व का महत्व स्वीकार कर लेने के बाद तो लोगों से संबंधित ब्यौरा इकट्ठा करने के लिए पर्याप्त राशि खर्च करनी चाहिए।

2. योजना के लक्ष्यों को पहले बुनियादी मानवीय ज़रूरतों के रूप में पेश किया जाना चाहिए और फिर बाद में उत्पादन और उपयोग के लक्ष्यों में उन्हें बदलना चाहिए। इसका मतलब यह है कि कम-से-कम औसत पौष्टिक आहार, शिक्षा, स्वास्थ, आवास और यातायात के लक्ष्यों को स्पष्ट रूप से बताना होगा। इस बात पर खुली चर्चा करनी होगी कि अभी प्रति व्यक्ति जितनी आय है और प्रति व्यक्ति जितनी आय आगे संभावित है, उसमें समाज की कितनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी हो सकती हैं। तब बुनियादी

ज़रूरतों के लक्ष्य को उत्पादन और उपयोग की विस्तृत योजना बनाने में शामिल करना होगा। दूसरे शब्दों में, हमें साध्य से साधन की तरफ जाना होगा, न कि साधन से साध्य की तरफ।

3. विकास की योजना में मानवीय आयाम को जोड़ने के लिए यह ज़रूरी है कि उत्पादन और वितरण के लक्ष्यों का एकीकरण किया जाए और उन पर समान रूप से ज़ोर दिया जाए। विकास योजना में सिर्फ यह न हो कि क्या पैदा किया जा रहा है, बल्कि यह भी हो कि उसका वितरण किस प्रकार होगा; और राष्ट्रीय उत्पाद के समान वितरण के लिए क्या ठोस नीतियां लागू की जाएंगी। इसके लिए गरीबों, खासकर छोटे किसानों और छोटे उद्यमियों की उत्पादन क्षमता को बढ़ाने के लिए एक कार्य योजना और क्रियान्वयन की व्यवस्था बनाना ज़रूरी होगा। इसके लिए यह भी ज़रूरी है कि रोज़गार की योजना उत्पादन की योजना के साथ बने क्योंकि गरीब समुदायों में वितरण की व्यवस्था सुधारने का असरदार तरीका रोज़गार के उपयुक्त मौके पैदा करना है।

यह ज़रूर है कि उत्पादन और वितरण की जो चिंता है उनके एकीकरण का मतलब है कि उत्पादक चीज़ों का, खासकर भूमि का, फिर से वितरण हो। अगर मौजूदा वितरण बहुत असमान है और तो जो लोग सबसे गरीब हैं उनके लिए सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था हो।

4. मानव विकास की रणनीति का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए जिससे कि लोगों की भागीदारी और आत्मनिर्भरता संभव बने। यह विडम्बना है कि लोगों को आर्थिक योजना का अंतिम लक्ष्य तो माना जाता है पर उन्हें उनके लिए बनने वाली योजना में पूरी तरह भाग नहीं लेने दिया जाता। इस बारे में कई विकासशील देश भ्रम की स्थिति में हैं। राष्ट्रीय योजनाओं में मानव विकास के बारे में ऊंचे-ऊंचे लक्ष्य रखे जाते हैं पर वे इसलिए धराशायी हो जाते हैं कि योजना बनाने और उन्हें लागू करने में हितग्राहियों को कुछ कहने का बहुत कम मौका मिलता है।

5. विकास योजनाओं में इनके क्रियान्वयन का विश्लेषण करने के लिए एक मानवीय परिप्रेक्ष्य होना चाहिए। योजना की प्रगति पर निगरानी रखने के लिए व्यापक सामाजिक और मानव विकास के संकेतक विकसित किए जाने चाहिए। जब सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर के साथ ही वार्षिक आंकलनों में मानवीय कहानी का भी उल्लेख हो कि कितने लोगों ने कितनी वृद्धि का अनुभव किया और तुलनात्मक और संपूर्ण गरीबी स्तर में हर साल कैसे

बदलाव आया। कुछ देशों में सकल राष्ट्रीय उत्पादन थम गया होगा लेकिन बहुत-सी मानव पूंजी निर्मित हुई होगी और इससे भावी वृद्धि की संभावना मज़बूत हुई होगी। इससे यह बात भी साफ होगी कि दूसरे देशों से तुलना करने के लिए सिर्फ वास्तविक वृद्धि के माप को आधार मानना ठीक नहीं है।

ये तत्व विकासशील देशों की हर आर्थिक योजना में बताए जाने चाहिए। योजना के पहले भाग में इन पांच तत्वों का विस्तार से उल्लेख होना चाहिए और परम्परागत राष्ट्रीय आय का लेखा और अन्य लक्ष्य योजना के दूसरे भाग में रखना चाहिए। यदि विकास योजनाएं इस तरीके से बनाई जाती हैं तो वे न केवल अधिक सार्थक होंगी बल्कि उन लोगों के द्वारा पढ़ी भी जाएंगी जिनके लिए वे बनाई गई हैं। एक फायदा यह भी होगा कि सभी योजनाएं एक-सी नहीं दिखेंगी। उनमें उनकी जनता और उनके समुदायों का रंगरूप झलकेगा। इससे उन पेशेवर सलाहकारों के अहं को भी धक्का लगेगा, जो इलेक्ट्रॉनिक बटन दबाकर विकास की योजनाओं के मॉडलों के बारे में बताते हुए एक देश से दूसरे देश में घूम रहे हैं।

ये बदलाव छोटे नहीं हैं। ये बुनियादी हैं। और हालांकि कठिनाइयां ढेर सारी आ रही हैं पर काम चुनौती भरा, उत्तेजनापूर्ण और उपयोगी है। हमें याद रखना चाहिए कि इनमें से कई कठिनाइयों का सामना तब किया गया था जब राष्ट्रीय आय के लेखे का शुरुआती ढांचा बनाया जा रहा था। इसलिए शुरुआती कोशिशों की कठिनाइयां हल होने के बाद मानवीय जोड़-घटा का ब्यौरा भी सामान्य बात हो जाएगी।

एडजस्टमेंट प्रक्रिया में मानवीय आयाम

कुछ समय से इस बात पर काफी बहस चल रही है कि क्या एडजस्टमेंट प्रक्रिया का मानव विकास से ताल-मेल है या नहीं। इस बहस का निराकरण करने का समय हो चुका है– एडजस्टमेंट की कोई भी प्रक्रिया सफल हो ही नहीं सकती अगर वो मानव विकास को बढ़ावा न दे।

एडजस्टमेंट की नीतियों और वृद्धि का मानव विकास से कथित टकराव पिछले दो सालों से अंतर्राष्ट्रीय चर्चाओं में छाया हुआ है। अवधारणात्मक स्तर पर यह कुछ अजीब-सा लगता है क्योंकि इस मुद्दे पर ज़रूरत से कम दिमाग खपाया गया है। एक विचार-धारा मानती है कि मानव विकास की बढ़ोतरी और एडजस्टमेंट नीतियां एक-दूसरे की विरोधी हैं और उन्हें राष्ट्रीय नीति के ढांचे में एक साथ नहीं रखा जा सकता। इस विचारधारा को मानने वालों का तर्क है कि एडजस्टमेंट के लिए कम अवधि वाली मांग का प्रबंधन ज़रूरी होता है, जबकि वृद्धि के लिए लम्बी अवधि वाली आपूर्ति का विस्तार चाहिए। उनका तर्क है कि एडजस्टमेंट की नीतियों के लिए कीमतों की विकृतियों को ठीक करने की, बाज़ार के मेकेनिज़्म की भूमिका बढ़ाने की और सरकारी हस्तक्षेप की भूमिका कम करने की ज़रूरत होती है। इसका मतलब है कि अर्थ व्यवस्था से सरकार ने जान-बूझकर अपने हाथ खींचे। इसके लिए विपरीत मानव विकास के लिए सरकारी हस्तक्षेप ज़्यादा चाहिए और सरकार की उपस्थिति भी ज़्यादा चाहिए , खासकर शिक्षा और स्वास्थ्य में।

आइए हम सावधानी से इस तर्क का परीक्षण करें क्योंकि एडजस्टमेंट की नीतियों और वृद्धि का मानव विकास के साथ कथित टकराव शायद वास्तविक न हो, सिर्फ दिखता ऐसा हो। आज अधिकांश विकासशील देशों में संसाधनों का आवंटन ठीक नहीं है। यदि मांग के प्रबंधन में सुधार हो जाता है, यदि कीमतों की तोड़-मरोड़ ठीक कर ली जाती है, यदि सरकार का (पब्लिक) गैरज़रूरी दखल कम हो जाता है और यदि अकुशल और भ्रष्ट आर्थिक और प्रशासनिक नियंत्रण खत्म

कर दिए जाते हैं, तो वृद्धि और मानव विकास दोनों के लिए ज़रूरी संसाधन मुक्त हो सकेंगे।

पाकिस्तान ने दिखाया है कि एडजस्टमेंट की सही नीतियों से मानव संसाधन विकास की ज़्यादा वृद्धि और उसके लिए ज़्यादा धन उपलब्ध हो सकता है। 1980 से लेकर 1986 तक एडजस्टमेंट अपनाते समय पाकिस्तान ने शिक्षा और स्वास्थ्य पर व्यय कम नहीं किया। उसमें उन्होंने बढ़ोतरी कर दी। यानी 1980 में जो सरकारी खर्च 8.6 प्रतिशत था वह 1986 में 14.2 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार पाकिस्तान ने न तो वृद्धि की कीमत पर एडजस्टमेंट किया और न ही मानव विकास की कीमत पर। उसका सकल घरेलू उत्पाद इस दौरान हर साल करीब 6.5 प्रतिशत बढ़ा।

1980-86 के दौरान पाकिस्तान की सरकार ने कई एडजस्टमेंट के ज़रिए बजट के 25 प्रतिशत संसाधन मुक्त किए। जिससे ऊर्जा, विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य और दूसरे मानव संसाधन विकास कार्यक्रमों के लिए ज़्यादा धन लगाया जा सके। कई सरकारी उद्योग जो 1970 में राष्ट्रीयकृत कर लिए गए थे और ठीक से नहीं चल रहे थे उन्हें निजी हाथों को सौंप दिया गया। आर्थिक नियंत्रण, सरकारी नियंत्रण, कीमतों की विकृतियां और सबसिडी कम कर दी गईं। कई सबसिडियां जो विकासशील देशों में चली आ रही हैं उनसे धनवान और ताकतवर लोगों को और साधारण शहरी उच्च वर्ग को फायदा होता है। ऐसी सबसिडियों के कम होने से देश ऐसे कार्यक्रम चला सकते हैं जो ज़्यादा लोगों को फायदा पहुंचाते हैं। एडजस्टमेंट और मानव विकास की वृद्धि एक-दूसरे के विरोधी

नहीं हैं, बल्कि इससे उपयुक्त कार्यक्रम और नीतियां बनाने के लिए एक बौद्धिक और नीतिगत चुनौती मिलती है और अवसर भी मिलता है। और यदि नीति के मोर्चे पर असफलता मिलती है तो उसे यह कहकर नहीं टाल देना चाहिए कि ये लक्ष्य अवधारणा के तल पर उपयुक्त नहीं थे। इन दो चिंताओं को मिलाने की चुनौती कुछ ऐसी है कि जैसे 1970 के दशक के शुरुआती सालों में वृद्धि की विचारधारा और वितरण की विचारधारा के विरोधी मतों को एक कर देने की। वृद्धि की विचारधारा यह मानती थी कि विकासशील देशों को सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि पर सबसे ज़्यादा ज़ोर देना चाहिए, नहीं तो वे गरीबी को ही फिर से बांटते रहेंगे। दूसरी विचारधारा का ज़ोरदार तर्क यह था कि यदि सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि को ही महत्व दिया जाए तो आय और धन का गंभीर संग्रह होगा और राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ने के बावजूद मानवीय जीवन की गुणवत्ता कम हो जाएगी।

राष्ट्रीय नियोजन के ढांचे में वृद्धि और वितरण की नीतियों को एकीकृत करना बौद्धिक चुनौती है। ब्रिटेन के ससेक्स इंस्टीट्यूट में काम करने वाले एक समूह ने इस विषय का एक नया विश्लेषण किया। इस समूह को अधिकांश वित्तीय सहायता विश्व बैंक ने दी थी जब रॉबर्ट एस. मैकनमारा उसके अध्यक्ष थे। इस समूह के नेता होलिस चेनरी थे और हैंस सिंगर, डउले सीयर्स और रिचार्ड जाली जैसे अद्वितीय विद्वान थे। समाधान बहुत सरल था, जैसा कि हर हकीकत में होता है: हां, बढ़ी हुई पैदावार ज़रूरी है; लेकिन सवाल यह है कि बढ़ी हुई पैदावार किसकी और किसके लिए। उत्पादन के साधनों और सार्वजनिक सामाजिक सेवाओं के वितरण के लिए ही रणनीति नहीं बनाना चाहिए बल्कि ज़्यादातर गरीबों की उत्पादकता भी बढ़ाई जानी चाहिए।

इस बौद्धिक समाधान के साथ राष्ट्रीय नीति निर्माताओं ने विकास की योजनाओं की रणनीतियां फिर से बनाने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। गरीबों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए गरीबी मापक और कार्यनीति बनाना योजना बनाने में उतना ही अहम हो गया जितना कि राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने के लिए सकल राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि की नाप और नीतियां। मैकनमारा ने अपनी दूरदृष्टि और सक्रियता से गरीबों की उत्पादकता बढ़ाने का झंडा उठाया और विश्व बैंक की सभी नीतियों एवं ऋण कार्यक्रमों को इस तरफ मोड़ दिया। अपनी ज़ोरदार दलीलों के जरिए उन्होंने सभी अन्य अंतर्राष्ट्रीय विकास संस्थाओं की नीतियों को और पूरे संसार की सोच को प्रभावित किया।

हमें अब मानव विकास के साथ वृद्धि और एडजस्टमेंट के सरोकारों के इर्द-गिर्द वैसा ही बौद्धिक माहौल पैदा करना है। इन ज़रूरी चिंताओं के बीच एक समन्वय बनाने के लिए शोध संस्थाओं को आगे बढ़कर कुछ गंभीर विश्लेषणात्मक काम हाथ में लेना चाहिए।

एक दूसरी चुनौती यह है कि राष्ट्रीय नीति में इस समन्वय को कैसे आगे बढ़ाया जाए। बिगड़ते हुए अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में उन मुद्दों के लिए लगातार बहाने ढूंढना विकासशील देशों के लिए शायद ही फायदेमंद हो जो मुद्दे मुख्यतः ढांचागत हैं और जिनका इलाज सिर्फ राष्ट्रीय योजना बनाने वाले और नीतियां बनाने वाले ही कर सकते हैं। कुछ समय पहले तंजानिया के राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे ने बड़ी निराशा से सवाल किया था कि क्या हम अपना कर्ज़ चुकाने के लिए अपने बच्चों को भूखा मरने दें। यह भी सवाल किया जा सकता है कि क्या हमें अपने रक्षा संबंधी खर्च को बढ़ाने के लिए अपने बच्चों को भूखा मारना चाहिए? एक दुखद सच्चाई यह है कि कम आय वाले विकासशील देशों में शिक्षा और स्वास्थ पर खर्च 1972 में 21 प्रतिशत से घटकर 1982 में 9 प्रतिशत हो गया। जबकि उसी अवधि के दौरान विकासशील देशों का रक्षा व्यय 7 बिलियन डॉलर से बढ़कर 100 बिलियन डॉलर से ज़्यादा हो गया। इसलिए यह सवाल उठाना बिल्कुल सही है कि जब हमारे बच्चे आधी रात में दूध के लिए रोएं तो क्या हम उन्हें दूध के बदले बंदूकें दे दें?

घरु संसाधनों का आवंटन करने में विकासशील देशों की विवेकहीनता सिर्फ रक्षा संबंधी खर्च से ही ज़ाहिर नहीं होती। कई विकासशील देशों में सरकार की अकुशलता और भ्रष्टाचार का हिसाब अक्सर सरकारी बजट के 20 प्रतिशत से ज़्यादा हो जाता है। लेकिन विदेशी सहायता थोड़ी-सी घटाने के लिए बेहद टालमटोल की जाती है, जबकि आर्थिक प्रबंधन में थोड़ी-सी कसावट लाने पर सही वृद्धि और मानव विकास की ज़रूरतों के लिए काफी ज़्यादा संसाधन मिल सकते हैं।

जब पाकिस्तान ने बच्चों के टीकाकरण की ज़रूरत को पूरा करने का फैसला किया, तो उसने क्या किया? बच्चों की जीवनरक्षा की एक अत्यंत नाटकीय कथा यह है कि इस कार्यक्रम से पाकिस्तान के बच्चों के टीकाकरण की दर 1983 में 5 प्रतिशत से बढ़कर 1988 में 75 प्रतिशत तक हो गई और इस कार्यक्रम के कारण हर साल एक लाख बच्चे मौत के मुंह में जाने से बचते हैं। क्या इसके लिए पाकिस्तान ने ज़्यादा विदेशी सहायता ली? क्या उसने वृद्धि की दर कम की? नहीं। उसने किया यह कि एक महंगे शहरी

अस्पताल बनाने के काम को 5 साल के लिए टाल दिया। सिर्फ इसी से टीकाकरण अभियान का पूरा खर्च निकल गया।

और पाकिस्तान ने 70 प्रतिशत आबादी वाले ग्रामीण इलाकों में सार्वजनिक सेवाओं और बुनियादी ढांचे का विस्तार करने के लिए क्या किया? सार्वजनिक व्यय की राशि का सिर्फ 10 प्रतिशत भाग ग्रामीण क्षेत्रों को जा रहा था क्योंकि गांव के अभिजात्य लोग भी शहरों में रहते हैं। इसके बावजूद पाकिस्तान ने शहरों को बीच-बीच में 2 घण्टे कम बिजली देकर 1983 और 1988 के बीच देश के आधे गांवों में बिजली पहुंचा दी।

ऐसे राजनीतिक फैसले कठिन होते हैं, लेकिन घरु प्राथमिकताएं बदलकर काफी कुछ काम पूरा किया जा सकता है। नियंत्रण को कम करके, सबसिडी घटाकर अकुशल उद्योगों पर हो रहा सरकारी खर्च कम करके और घरु प्राथमिकताओं में फेरबदल करके पाकिस्तान वृद्धि और मानव विकास दोनों में बढ़ोतरी कर सका। फिर भी पाकिस्तान के आर्थिक प्रबंधन में सुधार करने के लिए और संसाधनों को वृद्धि और मानव की तरफ मोड़ने के लिए काफी गुंजाइश है। जो लोग विकासशील देशों में इन लक्ष्यों के बीच बुनियादी टकराव देखते हैं वे यह मान लेते हैं कि संसाधनों का आवंटन पहले से बिल्कुल ही ठीक है। यह स्पष्ट है कि वे गलत हैं।

फैसलों में मानवीय आयाम

यदि विकास की नीति के फैसलों में मानवीय आयामों को पूरी तरह दिखाना है तो सबसे बड़ी लड़ाई

विकासशील देशों के सत्ता के गलियारों में लड़ी जाना है। लेकिन इस मुद्दे को अंतर्राष्ट्रीय फैसलों में और आर्थिक सहायता देने वाले देशों के कार्यक्रमों तथा कार्यप्रणाली में भी शामिल किया जाना चाहिए। इस संबंध में कम-से-कम चार मुद्दे ध्यान देने योग्य हैं:

पहला: फिलहाल राष्ट्रीय विकास योजनाओं की सालाना समीक्षा और आर्थिक नियोजन में समेकित परामर्श को विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और क्षेत्रीय विकास बैंकों का विशेषाधिकार माना जाता है। संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष एजेन्सियां – यूनेस्को, विश्व स्वास्थ्य संगठन, युनिसेफ, यू.एन.एफ.पी.ए, यू.एन.डी.पी., अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि जो सूक्ष्म स्तर पर मानव विकास के मुद्दों से ताल्लुक रखती हैं, को यह विशेषाधिकार नहीं है। और किसी देश के कामकाज की समीक्षा के लिए जो कंसोर्टियम और सलाहकार समूह हैं उनमें उन्हें सामान्यतः आमंत्रित नहीं किया जाता। यदि मानव विकास को केन्द्रीय महत्व दिया जाता है तो विश्वबैंक और क्षेत्रीय विकास बैंकों को राष्ट्रीय आय के खातों और उत्पादन की योजना बनाने के व्यापक आर्थिक पहलुओं से मानव विकास के मुद्दों की तरफ जाना होगा। सत्तर के दशक में मेकनमारा के नेतृत्व में ऐसा होने लगा था पर इन दिनों वह रास्ता उतना निश्चित नहीं है। इसके अलावा संबंधित संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों को विश्व बैंक के सालाना मिशनों और देशों के कन्सोर्टियमों और सलाहकार समूहों में उनकी नियमित हिस्सेदारी के ज़रिए इन सालाना समीक्षाओं और नीति परामर्श से जोड़ना ज़रूरी है। वर्तमान में ब्रेटनवुडस* और संयुक्त राष्ट्र संघ की संस्थाओं में बड़ी खाई है जो वित्तीय और मानवीय मुद्दों के विभेद से प्रकट होती है। इस खाई को पाटने के लिए व्यावहारिक रास्ते खोजना कठिन न होगा।

दूसरा: कर्ज़ देने की शर्तों की रूपरेखा बदलना चाहिए। बजट और भुगतान के संतुलन के उपायों की मेक्रो इकॉनॉमिक शर्तों के अलावा, व ज़रूरी नीतिगत तथा संस्थागत बदलावों के लिए सेक्टर संबंधी शर्तों के अलावा न्यूनतम पोषण के मानक की रक्षा के

* *ब्रेटनवुड्स: वह जगह जहां दूसरे विश्व युद्ध के अंत की ओर जुलाई 1944 में यह तय करने के लिए एक सम्मेलन हुआ था कि विभिन्न देशों के बीच आर्थिक व्यवस्थाओं का कैसा तंत्र विकसित किया जाए जिससे पैसे के अंतर्राष्ट्रीय लेन-देन के अल्पकालीन असंतुलन को संभाला जा सके व आपसी विनिमय की दरों को स्थिरता प्रदान की जा सके। इसका दूसरा मकसद युद्ध के विनाश से गुज़रे देशों को पुनर्रचना के लिए पूंजी उपलब्ध करवाना था। इस विचार विमर्श से दो संस्थाएं उभरीं – विश्व बैंक व आई. एम. एफ. यानी इंटरनेशनल मोनेटरी फंड।*

लिए, न्यूनतम रोज़गार स्तर बनाए रखने के लिए और शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए व्यय का स्तर तय करने के लिए भी शर्तें होनी चाहिए। विश्वबैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को चाहिए कि वे मानवीय आयामों को शामिल करने के लिए अपनी शर्तों के पैकेज की समीक्षा करें और ऐसी समीक्षा में संयुक्त राष्ट्र संघ की एजेन्सियों को पूरी तरह जोड़ें।

तीसरा: मानव विकास कार्यक्रमों, जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य को कुल अंतर्राष्ट्रीय सहायता की तुलना में साधारणत: कम कर्ज़ दिया जाता है क्योंकि राष्ट्रीय विकास योजनाओं में ही इन्हें कम प्राथमिकता दी जाती है। वित्तीय संसाधनों की जो सीमाएं हैं उन्हें देखते हुए उदार ताकतों को चाहिए कि वे मानव संसाधन विकास के सेक्टरों के लिए ऊंची प्राथमिकता दिलाने के लिए अपने देश के घरू मोर्चे पर लड़ें। ये सेक्टर घरू संसाधनों का बहुत ज़्यादा उपयोग करते हैं और इनमें विदेशी मुद्रा का हिस्सा कम होता है और आवर्ती खर्च ज़्यादा होता है। वित्त मंत्री अक्सर उन्हें धन देने में आना-कानी करते हैं और उनकी आना-कानी को तब बल मिलता है जब अंतर्राष्ट्रीय दानदाता अपने आवंटन में इन सेक्टरों को कम प्राथमिकता देते हैं। यह साफ है कि सलाह और उसे व्यावहारिक जामा पहनाने के बीच एक मज़बूत कड़ी बनाने की ज़रूरत है।

चौथा: एक ठोस प्रस्ताव। मानव विकास की समस्याएं दक्षिण एशिया के ज़्यादा आबादी वाले देशों में बहुत सघन हैं। सात देशों – बांग्लादेश, भूटान, भारत, मालदीव, नेपाल, पाकिस्तान और श्रीलंका ने सार्क नामक संगठन बना लिया है। इस क्षेत्र में एक बिलियन से ज़्यादा आबादी है जिसमें ज़्यादातर अशिक्षित हैं और पोषण स्तर नीचा है और मृत्यु दर ऊंची है। परम्परागत सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर के रूप में तो इस क्षेत्र की स्थिति अच्छी है पर मानव विकास के हिसाब से इसकी स्थिति खराब है। दुनिया के गरीबों का 80 प्रतिशत हिस्सा इस क्षेत्र में रहता है। क्यों न सन 2000 के लिए सार्क के लिए एक मानव विकास योजना तैयार करके उसे क्रियान्वित किया जाए?

राष्ट्रीय विकास की योजना बनाने वाले विशेषज्ञ अपने देश के पोषण स्तर, साक्षरता, स्वास्थ्य संकेतक और आबादी की वृद्धि के लक्ष्य तय कर सकते हैं जिसे सार्क की सालाना बैठक में स्वीकृत किया जाए। फिर सार्क की इस योजना के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और वित्तीय संसाधन प्राप्त किए जा सकते हैं। मार्शल प्लान* के दिन तो बहुत पहले चले गए पर ऐसा लगता है कि एक बिलियन से ज़्यादा आबादी के मानव विकास की एक व्यावहारिक

योजना औद्योगिक देशों के लोगों और अनिच्छुक विधि निर्माताओं का ध्यान ज़रूर आकर्षित करेगी। अगर यह सब इस बात से भी जुड़ जाए कि हर साल सैनिक खर्च में जो 20 बिलियन डॉलर से ज़्यादा खर्च हो रहे हैं उसमें आपसी सहमति से चरणबद्ध रूप से कमी करने के लिए सभी देश सहमत हो जाएं तो यह कितना ज़बर्दस्त होगा।

विकास के मानवीय आयाम का मतलब विकास की चर्चा में केवल एक अतिरिक्त चीज़ को जोड़ना नहीं है। यह एकदम नया नज़रिया है और विकास के बारे में सोचने के हमारे पारम्परिक तरीके को फिर से रूप देने का एक क्रांतिकारी तरीका है। सोच में इस परिवर्तन से मानवीय सभ्यता और प्रजातंत्र एक नई मंज़िल तक पहुंचेंगे। तब लोग विकास के अवशेष न होकर विकास का मुख्य उद्देश्य और विषय बन जाएंगे। तब वे एक भूली-बिसरी आर्थिक कल्पना न रहकर, एक ज़िन्दा और सक्रिय वास्तविकता बन जाएंगे; और विकास की प्रक्रिया के असहाय शिकार और गुलाम न रह जाएंगे बल्कि उसके मालिक बन जाएंगे।

विकास के कई दशकों के बाद अब आर्थिक विकास में लोगों की ऐसी सत्ता स्थापित करना एक उत्तेजक चुनौती है और इसका मतलब मानव विकास के एक नए नमूने की तरफ बढ़ना है।

---

* *मार्शल प्लान: वह योजना जिसके तहत अमरीका ने यूरोपीय देशों को दूसरे विश्व युद्ध के असर से उबरने के लिए आर्थिक सहायता उपलब्ध करवाई। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि 'द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अमरीका संसाधनों व संभावनाओं वाले एक समृद्ध देश के रूप में उभरा जिसकी अर्थ व्यवस्था विशाल थी व जिसकी भूमि पर युद्ध का कोई असर नहीं था।' यही समय था जब अमरीका रूस के प्रभाव व यूरोप में उभरते हुए वामपंथी दलों का प्रतिकार करना चाहता था।*

महबूब-उल-हक: (1934-1998) विख्यात अर्थशास्त्री एवं लेखक। उच्च शिक्षा कैम्ब्रिज एवं येल विश्वविद्यालय में हुई। दुनिया के मुल्कों से गरीबी कम करने के लिए विश्व बैंक की रणनीतियों को बनाने में रॉबर्ट मेकनमारा (अध्यक्ष विश्व बैंक 1970 -82) के साथ मिलकर काम किया। विश्वस्तरीय अनेक संस्थाओं को अपनी सेवाएं प्रदान की। सन् 1982-88 के दौरान पाकिस्तान में योजना एवं वित्त विभाग में मंत्री पद पर भी काम किया। 1990-95 के दौरान यू.एन.डी.पी. की मानव विकास रिपोर्ट के संस्थापक सदस्य एवं लेखक भी रहे हैं। इसी रिपोर्ट की तर्ज़ पर आजकल कई देशों में इस तरह की रिपोर्ट बनाई जा रही हैं। महबूब-उल-हक की कुछ अन्य किताबें हैं – द स्ट्रेटेजी ऑफ इकॉनोमिक प्लानिंग, द पॉवर्टी कर्टेन कोलंबिया।

अनुवाद: सुरेश मिश्र: इतिहास के पूर्व प्राध्यापक। वर्तमान में एकलव्य के भोपाल केन्द्र पर विकास एवं योजना के कामों से जुड़े हैं।

यह लेख **'रिफलेक्शन्स ऑन ह्यूमन डिवेलपमेंट'** लेखक: महबूब-उल-हक; प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस की किताब से अनुदित किया गया है।